इकाई 2 पर्यावरण और प्रारंभिक समाज–I: आखेटक–संग्रहक एवं यायावर/खानाबदोश समाज*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 ऐतिहासिक स्रोतों की प्रकृति

2.3 आखेटक–संग्रहक

2.3.1 पुरापाषाण संस्कृतियां

2.3.2 मध्यपाषाण संस्कृतियां

2.4 यायावर/खानाबदोश समुदाय

2.5 सारांश

2.6 शब्दावली

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.8 संदर्भ ग्रंथ

2.9 अनुदेशात्मक वीडियो सुझााव

---

* डॉ. दिव्या सेठी, पी.एच.डी., इतिहास अध्ययन केंद्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप प्रागैतिहासिक एवं आद्य–ऐतिहासिक काल के पर्यावरण के इतिहास का अध्ययन करेंगे। इस काल के दौरान अनके अंतर्संबंधित घटनाओं का विकास हुआ। इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- प्रारंभिक समाजों के पर्यावरण के इतिहास के अध्ययन को सुगम बनाने वाले स्रोतों के बारे में जान सकेंगे;
- मानवों के पर्यावरण के साथ परस्पर संपर्क का विश्लेषण कर सकेंगे;
- मानवीय इतिहास के चरित्र को आकार देने में पर्यावरण की भूमिका और प्रभाव का परीक्षण कर सकेंगे;
- आखेटक–संग्रहकों के जीवन एवं जीविका निर्वाह की पद्धतियों के स्वरूप को समझ सकेंगे;
- यायावरी पशुचारण की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे;
- यायावरी समुदायों के बसावट के स्वपरूप (settlement patterns) की चर्चा कर सकेंगे; एवं
- मानव पर्यावरण के संबंधों के परिप्रेक्ष्य में समानांतर रूप से मानव जाति के विकास की व्याख्या कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

भारत में पर्यावरण के इतिहास से संबंधित अधिकांश लेख बीती दो शताब्दियों[1] में घटी घटनाओं से संबंधित हैं। परंतु प्रारंभिक भारत में पर्यावरण के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है जिसकी बाद में होने वाले विकास में एक भूमिका रही है। पूर्व–औपनिवेशिक काल पर प्रकाशित होने वाला प्रथम प्रमुख अध्ययन 1992[2] में गाडगिल और गुहा द्वारा किया गया था जिसने लंबे समय में होने वाले पारिस्थितिकीय परिवर्तनों के स्वरूपप र ध्यान दिया। हाल में इतिहासकारों के द्वारा अनेक प्रकार के पुरातात्विक साक्ष्यों, कला रूपों एवं साहित्यिक ग्रंथों का विश्लेषण करत हुए एक पुनर्मूल्यांकन किया गया है। क्षेत्रीय साक्ष्यों ने नए स्रोतों पर प्रकाश डाला है जो हमें भारत में प्राचीन एवं मध्यकाल के संबंध में बेहतर अतंर्दृष्टि प्रदान करते हैं (जैसा कि आप इकाई 3 एवं 4 में पढ़ेंगे)। इन प्रयासों के बावजूद, उपलब्ध स्रोतों की सीमाओं के कारण प्रारंभिक समाज के बारे में हमारे ज्ञान के आधार में भविष्य में होने वाले पुरातात्विक एवं मानवशास्त्रीय (anthropological) प्रयत्नों से वृद्धि होगी।

इतिहास भूगोल के बिना अधूरा है। भौगोलिक विविधता उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों में सांस्कृतिक विकास के असमान स्वरूप को स्पष्ट करती है। उदाहरण के लिए गुजरात में तीसरी सहस्राब्दि बी.सी.ई. के उत्तरार्ध में मध्यपाषाणीय

---

[1] फिर भी हम इस ज़्यादा अध्ययन किए गए क्षेत्र के बारे में कम ही जानते हैं। नए साक्ष्य ओर अंतर्विसयक (interdisciplining) दृष्टिकोण काफी कुछ जानकारी देने में सक्षम होंगे।

[2] गाडगिक, माधव और गुहा, रामचंद्र (1992), दिस फिशर्ड लैंडः एन इकोलोजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया (दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)।

संस्कृतियां थीं और इसी समय दक्कन के क्षेत्र में नवपाषाण संस्कृति विद्यमान थी। इसी प्रकार, विकसित हड़प्पा संस्कृति (Mature Harappan) भी इन संस्कृतियों के साथ विभिन्न स्तरों पर सहअस्तित्व में थी। अतः पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में मानवीय संस्कृतियां किसी भी एक समय पर समान नहीं थीं। भारतीय उपमहाद्वीप के तीन प्रमुख भौगोलिक विभाजन हैं:

1) हिमालय की उच्च भूमि (पूर्वी, पश्चिमी और मध्य),

2) सिंधु–गंगा मैदान, एवं

3) प्रायद्वीपीय भारत।

भारतीय उपमहाद्वीप में पर्यावरण के इतिहास में पारिस्थितिकी और भौगोलिक विशिष्टताओं के मूल सिद्धांतों की भूमिका रही है। भौगोलिक विशेषताओं के संबंध में उपमहाद्वीप विशाल विविधता प्रदर्शित करता है – हिमालय (शिवालिक की पहाड़ियां, लघु हिमालय, वृहद हिमालय, पूर्वी उच्च भूमि), उत्तरी भारत के मैदान, भारतीय पठार (अरावली की पहाड़ियां, विन्ध्य की पहाड़ियां, सतुपड़ा की पहाड़ियां, छत्तीसगढ़ के मैदान, छोटा नागपुर की पठार और अन्य उप–क्षेत्र) और तटीय निम्न भूमि (पश्चिमी तटीय निम्न भूमि और पूर्वी तटीय निम्न भूमि) और इसलिए यह विविध पारिस्थितिक स्वरूप है।

इस इकाई में हम मानवों की कहानी के आरंभ एवं पर्यावरण[3] के साथ उनके संपर्क के बारे में दृष्टि डालेंगे। यहां, आखेटक–संग्रहक और यायावरी/खानाबदोश समुदायों पर ध्यान दिया जाएगा।

2.2 ऐतिहासिक स्रोतों की प्रकृति

प्रागैतिहासिक काल, जिसे प्राक् इतिहास के नाम से भी जाना जाता है, मानव विकास के उस काल से संबंधित है जो लिखित स्रोतों के आगमन से काफी पहले कम के कम 26 लाख पूर्व तक जाता है। इन विद्वानों के मील के पत्थर स्वरूपी अनुसंधानों की बदौलत प्रागैतिहास पुरातत्व की तक शाखा के रूप में स्थापित हो चुका हैः

क) डेनियल विल्सन (द आर्कियोलॉजी ऐंड प्रिहिस्थेरिक एनाल्स ऑफ स्कॉटलैण्ड, 1851)

ख) चार्ल्स डार्विन (ऑन दि ऑरिजिन स्पीशीज़ बाई मीन्स ऑफ नैचुरल सेलेक्शन; 1859), एवं

ग) सर जॉन लग्बॉक (प्रिहिस्टोरिक टाईम्सः ऐज़ इलस्ट्रेटेड बाइ एन्शिएन्ट रिमेन्स ऐंड द मैनर्स ऐंड कस्टम्स ऑफ मॉडर्न सेवेजेस, 1865)।

---

[3] पर्यावरण में भौतिक परिवेश (जिसे प्रायः ''प्रकृति'' कहा जाता है) और अन्य सभी जीवित चीज़े (मनुष्यों के अलावा) शामिल हैं। जलवायु और स्थलाकृति संबंधी परिस्थितियों की विस्तृत विविधता पर्यावरण को प्रभावित करती है।

इन अध्ययनों ने दुनियाभर में मानव जाति की उत्पत्ति से संबंधित उपलब्ध साक्ष्यों को दर्ज किया। इसके बाद, काफी शोधों के परिणामस्वरूप प्रागैतिहास का विभाजन निम्नलिखित चरणों में किया गयाः

1) पुरापाषाण (इसमें निम्न, मध्य और उच्च पुरापाषाण शामिल हैं)

2) मध्यपाषाण

3) नवपाषाण

4) ताम्रपाषाण[4]

5) कॉस्य युग

6) लौह युग

प्रागैतिहासिक काल को समझने के लिए पत्थर के औज़ारों, पशु अवशेष, जैव अवशेष और मानव जीवाश्म इत्यादि के रूप में भौतिक अवशेष इन सभी चरणों में मौजूद हैं। हाल में, शोधकत्ताओं में प्रागैतिहास और उपलब्ध प्रथम लिखित स्रोतों के बीच के संक्रमण काल को आद्य–इतिहास की संज्ञा दी है। आद्य–इतिहास मानव इतिहास का वह काल है जब दुनिया के सभी क्षेत्रों में लिखित दस्तावेज़ (records) उपलब्ध नहीं थे। यह उन क्षेत्रों को संबोधित करता है जहाँ इतिहास का ज़िक्र उनके आस–पास के क्षेत्रों के लिखित स्रोतों

---

[4] ताम्रपाषाण काल नवपाषाण काल के बाद का एक सांस्कृतिक चरण है जिसकी विशेषता है पत्थर और तांबे का उपयोग।

मे किया गया हो। ''आद्य–ऐतिहासिक काल का प्रयोग प्रायः उन मानवीय सभ्यताओं को संबोधित करने के लिए किया जाता है जिसका लेखन अभी तक पढ़ा नहीं जा सकता है। उदाहरण के लिए, हड़प्पा सभ्यता।

पृथ्वी का इतिहास

भूगर्मशात्रियों ने पृथ्वी के इतिहास का जीवन के रूपों के विकास के संदर्भ में चार महाकल्पों या युगों में विभाजन किया हैः

1) पुराजीवी महाकल्प (पेलियोज़ोइक)

2) मध्यजीवी महाकल्प (मेसोज़ोइक)

3) तृतीय काल (टर्शियरी)

4) चतुर्थ काल (क्वाटरनरी)

तीसरे और चौथे काल – टर्शियरी और क्वाटरनरी को मिलाकर सेनोज़ोइक युग/स्तनधारी जीवियों का युग कहा जाता हैं जो करीब 10 करोड़ वर्ष पूर्व आरंभ हुआ था। सेनोज़ोइक युग को सात काला में विभाजित किया जाता है। इन सात कालों में आखिरी दो – प्लीस्टोसीन और होलोसीन (वर्तमान काल जिसमें हम रहते हैं जो 10000 वर्ष पूर्ण आरंभ हुआ) मानव विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण रहे हैं।

कालक्रम

प्लियोसीन काल	53 लाख से 26 लाख वर्ष पूर्व

प्लीस्टोसीन काल	25 लाख 80 हज़ार वर्ष से 100,000 वर्ष बी.सी.ई.[5]
निम्न पुरापाषाण काल	25 लाख वर्ष से एक लाख वर्ष पूर्व
मध्यपरापाषाण काल	250,000 वर्ष से 40,000 वर्ष पूर्व
उच्चपुरापाषाण काल	40,000 वर्ष से 12,000 वर्ष पूर्व
मध्यपाषाण काल	10,000 से 5000 वर्ष पूर्व
नवपाषाण काल	लगभग 9600 बी.सी.ई. से 2000 बी.सी.ई.

सामाजिक विज्ञान, जीव विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान और ललित कला जैसी कई शाखाएँ मानव इतिहास के ज्ञान को बढ़ाने में मदद करती हैं। सामाजिक विज्ञान में इस तरह के अध्ययन की दो शाखाएं है – पुरातत्व और मानवशास्त्र या नृविज्ञान[6]। पुरातत्व मानव इतिहास या अतीत का ज्ञान भौतिक अवशेषों या कलाकृतियों[7] के द्वारा प्रदान करता है। प्रागैतिहासिक काल में मानव जीवन के संबंध में अंतर्दृष्टि प्रदान करने के अतिरिक्त, पुरातत्व सभी कालों में एवं सभी

---

[5] विभिन्न कालों का कालक्रम एक दूसरे को बड़े ही रूप से अनुक्रमण नहीं करता और इसलिए दुनिया भर में इनमें भिन्नता दिखाई देती है।

[6] मानवशास्त्र या नृविज्ञान (एंथ्रोपोलोजी) – मानवशास्त्र या नृविज्ञानः विज्ञानकी वह शाखा है जो मानव जाति के जैविक और सांस्कृतिक विकास को समझने में मदद करती है। उदाहरण के लिए जैविक नृविज्ञान, सांस्कृतिक नृविज्ञान और भाषाई नृविज्ञान।

[7] कलाकृतियां वे भौतिक वस्तुएँ हैं जिन्हें अतीत में मानवों द्वारा बनाया, सशोधित और उपयोग किया गया है। यहाँ कलाकृति का अर्थ कला (art) से नहीं बल्कि मानव द्वारा बनाई या संशोधित की गई किसी भी वस्तु से है।

क्षेत्रों में मानव जीवन पर प्रकाश डालता है। पुरातात्विक कलाकृतियों के कई प्रकार हैं:

- पत्थर के औजार
- मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े
- गुफा चित्र
- सिक्के
- अभिलेख
- मुद्राएँ
- मूर्तियाँ
- वस्त्र
- पशु अवशेष
- मानव अवशेष

इसके अतिरिक्त कुछ अवाहय कृतियां (non-potable artefacts) होती हैं जिन्हें संरचनाएँ (features) कहा जाता है। ये संरचनाएं विभिन्न पुरातात्विक स्थलों के बारे में हमारी समझ बढ़ाते हैं। पारिस्थितिकीय कृतियाँ (ecofacts) या जैव कृतियां (पौधों एवं जानवरों के प्राकृतिक/जैविक अवशेष) भी हमारी समझ बढ़ाने में मदद करते हैं। मानव विकास की कहानी उस समय शुरू हुई जब उन्होने अपने आस–पास के वातावरण के साथ अंतःक्रिया करना और उसमें

परिवर्तन करना शुरू किया। मानव के स्वयं को जीवित रखने एवं औज़ार[8] बनाने की क्षमता के विकास के साथ ही सांस्कृतिक परिवर्तन आरंभ हो गयां

लगभग 20 लाख वर्ष पूर्व से थोड़ा पहले होमो प्रजाति (Genus) की उत्पत्ति के साथ ही पत्थर के औज़ार अस्तित्व में आए। फलकीकरण (Flaking) की तकनीक के साथ; जिसमें एक बड़े पत्थर के टुकड़े पर प्रहार करके टुकड़ों को हटाते हुए औज़ार बनाए जाते थे, मानकों ने विभिन्न उद्देश्यों के लिए विविध औज़ारों का निर्माण किया। आज़ार निर्माण की विशिष्टता विभिन्न संस्कृतियों को एक दूसरे से अलग करती हैं। पुरातत्वविदों एवं इतिहासकारों द्वारा विभिन्न सिद्धांत प्रस्तुत किए गए है जो प्रागैतिहासिक संस्कृतियों का निम्नलिखित वर्गीकरण करते हैं:

क) प्रारंभिक पुरापाषाण काल भोजन संग्रहण चरण के रूप में,

ख) परवर्ती पुरापाषाण काल आखेटक संग्रहण चरण के रूप में

ग) नवपाषाण काल खाद्य उत्पादन के चरण के रूप में

आखटेक संग्रहकों के जीवन के अन्वेषण की सीमाओं का वर्णन करती हुई यह उचित प्रतीत होती है:

---

[8] औज़ार वे मानव निर्मित वस्तुएँ थी जिसका उपयोग हाथों से कम करने में किया जाता है।

''लंबे समय के कारण और ... जो शेष है वह पत्थर के औज़ारों की बहुतायत है, जो प्रायः अपने मूल संदर्भ से अलग हो जाते हैं, और द्वितीयक संदर्भों में दब जाते हैं ... यद्यपि तुलनात्मक रूप से कुछ कम अवाछित सतही स्थल (relatively undisturbed surface sites) जिनके दोहन वर्तमान को अतीत की कुंजी के रूप में इस्तेमाल करते हुए पुरा–पारिस्थितिकीय पुनर्निर्माण के लिए उपयोगी रूप से किया जा सकता है। आरंभिक आखेटक–संग्रहक समाज के सांस्कृतिक और पारिस्थितिकीय पुनर्निर्माण को इसलिए इन सीमाओं की पृष्ठभूमि के संदर्भ में देखा जाना चाहिए'' (मिश्रा 1989: 17)।

2.3 आखेटक–संगहक

अन्य जानवरों की तरह मानवों के लिए जीविका का प्रारंभिक तरीका शिकार और संग्रहण था। जीविका की इस विद्या को मानव जाति के सामाजिक विकास में पहला चरण माना जाता है। यह चरण मानवता के इतिहास में बाद के चरणों की सूक्ष्म अविध की तुलना में सबसे लंबे समय तक कायम रहा। आखेटक–संग्रहक में भी कुछ क्षेत्रीय भिन्नताएं थीं, कुछ खुली जगहों पर और अन्य लोग गुफाओं/शौलाभयों में रहते थे। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, आखेटक–संग्रहकों के जीवन के बारे में अध्ययन करने के लिए साक्ष्य के प्राथमिक स्रोत पत्थर के औज़ारों के संयोजन (Assemblages) थे। इन पत्थर के औज़ारों के लिए न केवल विभिन्न प्रकार की सामग्रियों/पत्थरों का उपयोग किया गया था बल्कि इस प्रक्रिया के दौरान अनेक प्रयास किए गए थे।

2.3.1 पुरापाषाण संस्कृतियाँ

पुरापाषाण (पेलियोलिथिक) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम पुरातत्वविद जॉन लब्बॉक ने 1865 में किया था और यह प्रागैतिहास के उस काल को दर्शाता है जब मानव ने पत्थर के औज़ारों का निर्माण प्रारंभ किया था। यद्यपि जैविक दृष्टिकोण से मानवों के विकास पर यहां विस्तार से चर्चा नहीं की जाएगी। (विस्तृत जानकारी के लिए बीएचआईसी–102 की इकाई 2 देखें) लेकिन इस तथ्य का उल्लेख करने की आवश्यकता है कि इस विकास की प्रकृति केवल जैविक थी। पर्यावरण में आए परिवर्तनों और संसाधनों की सुलभता वे भी इसमें एक प्रमुख भूमिका निभाई है।

पहले नदी के किनारों पर जमी तलहटी या अवसादों में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के पत्थरों के औज़ारों के संयोजनों के तुलनात्मक स्तरीय संदर्भों (relative strategraphic contexts) के अध्ययन के आधार पर निम्न पुरापाषाण काल की तिथी निर्धारित की जाती थी। हाल की तिथि निर्धारण तकनीकों जैसे पेलियो मैग्नेटिज्म पोटाशियम–आर्गन, इलेक्ट्रान रचन रेसोनैंस (ESR) आदि के आगमन से निम्न पुरापाषाण काल का आरंभ 10 लाख वर्षों से भी आगे चला गया है। प्रारंभिक शोधों में मानव जीवन पर ध्यान केंद्रित न कर पत्थर के औज़ारों के संयोजनों के संग्रह पर जयादा जोर दिया गया था।

पुरापाषाण संस्कृति को अन्य मानदंडों के साथ, औज़ारों के प्रकार और आवास (habitat) की प्रकृति के आधार पर तीन चरणों में विभाजित किया गया है। इन तीनों चरणों के दौरान तकनीकी विकास की सतत् प्रक्रिया देखी गई है। इसकी शुरुआत निम्न पुरापाषाण संस्कृति से होती है, जब पत्थरों के औज़ारों से बने काटने के निशान के साथ जानवरों की हडिड्यों मानव प्रजाति

ऑस्ट्रेलोपिथिकस गरही के जीवाश्म के समीप पाई गई। सर्वप्रथम पत्थर के खंउक या चॉपर चॉपिंग औज़ार ओल्डवाई गोर्ज, तंजानिया में पाए गए। इसलिए इस प्रकार के औज़ारों को आल्डोवान औज़ारों (सरल, खंडित और पतले शल्क हटाकर बने पत्थर के औज़ार) के नाम से जाना गया।

चित्र 2.1: ओल्डोवान पाषाण चॉपर। श्रेय: जोस–मैनुएल बेनितो अल्वारेज़ 2007। स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स।

(https://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons /a/a7/Oldowan_ tradition_chopper.jpg)।

औज़ार बनाने की तकनीक में प्रगति के आधार पर होमोरेक्टस के द्वारा इस्तेमाल की गई एश्यूलियन तकनीक की एक प्रमुख विशेषता हस्तकुठार को आकार देने के लिए बड़े शल्कों का उत्पादन था। इन हस्तकुठारों का इस्तेमाल एक औज़ार एवं हथियार दोनों के रूप में किया जाता था। हस्तकुमार के साथ–साथ, विदारणी (cleaver), खुरचनियाँ (scrapers) और एक तरफा खुरचनियाँ (side-scrapers) अन्य औज़ार थे जो इस काल में बनाए जाते थे। मानवों के आहार में माँस के शामिल होने से अन्य सामाजिक परिवर्तन हुए और

एक विशिष्ट औज़ार किट का विकास हुआ। इस काल में जीविका निर्वाह के स्वरूप में शामिल थे:

क) आखेट या शिकार

ख) अवशेष–जीविता (scavenging)

ग) पौधों का संग्रहण।

जब होमो इरेक्टस अफ्रीका से बाहर गए तो उन्होंने अफ्रीका की रिफ्ट घाटी जैसे समान वातावरण में जीवित रहने की कोशिश की। रिवात नामक स्थल पर, इस्लामाबाद में समान पर्यावरणीय पारिस्थितियों के साथ 20 लाख वर्ष पुराने ओल्डोवान औज़ार प्राप्त हुए हैं। पूर्व की ओर, पब्बी पहाड़ियों में सेलम के समीप 16 लाख से 9 लाख वर्ष पुराने पेबल–फ़्लेक औज़ार (pebble-flake tools) मिले हैं। फिर पूर्व की ओर ही समान पेखल–फ़्लेक औज़ार जमा शिवालिक की पहाड़ियो से प्राप्त हुए हैं। दुनिया के विभिन्न भागों की तरह, भारत में भी एश्यूलियन औज़ार वाले स्थल, विभिन्न प्रकार की भू–आकृतियों (landscapes) में स्थित थे, जहाँ पत्थर प्राप्त करने के लिए स्रोत स्थल सदैव नज़दीकी क्षेत्रों में नहीं होते थे। दक्षिण भारत में कनाटक में एक विशिष्ट एश्यूलियन उद्योग पाया गया है।

सामान्यतः भारतीय उपमहाद्वीप में मानव का उद्भव निम्न पुरापाषाण काल से माना जाता है। इस कालावधि में पत्थर के औज़ारों के निर्माण की दो परंपराएं पहचानी गई हैं:

1) सोअन या सोहनियन

2) एश्यूलियन

सोहन संस्कृति (इस शब्दावली का प्रयोग सर्वप्रथम 1936 में हेलमट डी टेरा ने किया) पाकिस्तान में सोअन घाटी के नाम पर आधारित है जो शिवालिक की पहाड़ियों में पाई जाती है। इसके प्रमुख औज़ारों में शामिल हैं:

क) चॉपर

ख) कोर, एवं

ग) शल्क या फ़्लेक

यह संस्कृति मुख्यतः हिमालय के निचले भागों में सीमित थी जबकि एश्यूलियन औज़ारों में शामिल थे:

क) हस्तकुठार (hand axes)

ख) विदारणी (cleaver)

ग) खुरचनियाँ (scrapers)

यह संस्कृति किसी एक क्षेत्र में सीमित नहीं थी। बल्कि इसने विभिन्न प्रकार के पारिस्थितिक क्षेत्रों में स्वयं को अनुकूलित किया, जहाँ सूक्ष्म आवासों (microhabitats) में विविध प्रकार के कच्चे माल के रूप में पत्थर उपलब्ध थे।

मध्यपुरापाषाण संस्कृति नियंडरथल[9] मानवों और मूस्तीरी (Ousterian) औज़ारों वाली एक विशिष्ट औज़ार किट से संबंधित हैं जो बने हैं:

क) लेवाल्वा तकनीक, और

ब) डिस्क–कोर तकनीक से।

इन दोनों ही तकनीकों में मानव कोर का आकार निर्धारित करते थे और अत्यधिक सटीकता एवं सावधानी से पूर्व–निर्धारित फ़्लेक अलग करते थे। इस काल में सम्मिलित औज़ार भी बनाए गए। बेहतर औज़ार बनाने के साथ–साथ पहली शवाधान के रूप में सांस्कृतिक विश्वास की झलक मिलती है और बेहतर पर्यावरण और सामाजिक अनुकूलन की रणनीतियां सामने आती हैं। नर्मदा घाटी, मध्यप्रदेश में हथनौरा नामक स्थल से एक मानवीय खोपड़ी का हिस्सा प्राप्त हुआ है जिसे विकसित होमो इरेक्टस से संबंधित माना गया है।

उच्च परापाषाण संस्कृति के फलक (blades) औज़ार निर्माण तकनीक को अपनाया। आखेट एवं संग्रहण के अतिरिक्त क्रो मैग्नॉन मानवों ने मछली पकड़ना भी आरंभ किया। इतिहास के इस काल में दुनिया भर में कई संस्कृतियों ने जटिल बस्तियों का निर्माण किया और गुफा कला के रूप मे निपुण कलात्मक अभिव्यक्तियां प्रदर्शित कीं। एच. ब्रुइल (फेगन; 2014 में) के अनुसार गुफाओं में ऐसी कलात्मक अभिव्यक्तियां शिकार की सफलता

---

[9] नियंडरथल मानव के पास बेहतर माँसपेशियों की ताकत; बोलने की बढ़ी हुई क्षमता, ज्ञान के संचार के कुशल साधन थे और वे समूहों में शिकार करते थे।

सुनिश्चित करने के लिए किए गए अनुष्ठानों को दर्शाती हैं। विद्वानों ने पुरापाषाण कला की कार्यात्मकता से लेकर विशुद्ध सौंदर्य तक के दृष्टिकोण की व्याख्या की है।

इस प्रकार, पत्थर मानवों के लिए सबसे आसानी से उपलब्ध प्राकृतिक संसाधन था। एक अविनाशी और कठोर सामग्री होने के कारण यह लगभगभ समयातीत रूप से टिकाऊ है और इनमे आखटेक–संग्रहक समुदाय के बारे में बहुत जानकारी प्राप्त होती ह। औज़ार बनाने के लिए पत्थर की क्षमता का पता कब से लगा; इसकी सही समयावधि ज्ञात नहीं है, लेकिन आरंभिक निर्मित औज़ार – कई चॉपिंग औज़ारों के अलावा हस्त कुठार एवं विदारणी निश्चित रूप से ज्ञात हैं। औज़ार बनाने की प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के पत्थरों का उपयोग किया जाता था। उदाहरण के लिए, समुदायों को उपलब्ध स्थानीय प्रकारों के अलावा बलुआ पत्थर, क्वार्टज़ाइर और शेल्स। पत्थर के औज़ार बनाने के लिए अलग–अलग तरीके अपनाए गए। औज़ार बनाने की तकनीकों में प्रयुक्त सामानय प्रक्रिया में बेकार हुए पत्थर को भी पुनःसंसाधित कर दोबारा उपयोग में लाया जाता था।

जैसा ऊपर उल्लेख किया गया है, भारत में औज़ार निर्माण की दो प्रमुख तकनीकें थीं:

क) सोअन सांस्कृतिक परंपरा (चॉपर–चॉपिंग औज़ार परंपराएं)

ख) हस्तकुठार विदारणी या दोनों तरफ से शल्कित औज़ार संयोजन (इसमें एश्यूलियन सांस्कृतिक परंपरा भी शामिल हैं)।

उपमहाद्वीप में आरंभिक औज़ार निर्माण के साक्ष्य निम्न प्रमुख स्थलों से प्राप्त हुए हैं:

1) अतिरमपक्कम और गुडियम गुफाएँ

2) गुंडला–ब्रह्मनेश्वरम क्षेत्र

3) पेन्नार घाटी, तमिलनाडु

4) नर्मदा घाटी, मध्यभारत

5) नेवासा, गोदावरी घाटी, महाराष्ट्र

6) सोअन घाटी, पाकिस्तान

2.3.2 मध्यपाषाण संस्कृतियाँ

मेसोलिथिक (मध्यपाषाण) का अर्थ है मध्यपाषाण काल। यह मानव प्रागैतिहासिक काल में पुरापाषाण एवं नवपाषाण काल के बीच का काल है। हिमयुग के अंत, गर्म मौसम की परिस्थितियों की शुरुआत और समुद्री स्तर में वृद्धि के साथ इस काल में औज़ारों का आकार काफी होय हो गया। जलीय स्रोतों को शामिल करने के साथ आहार के विविधीकरण से जनसंख्या में वृद्धि हुई।

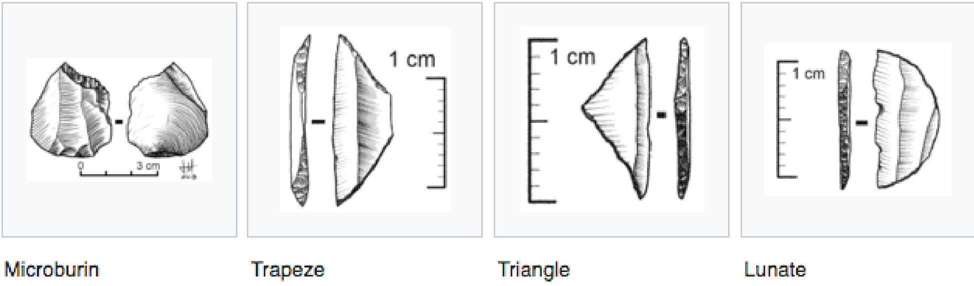

चित्र 2.2: ज्यामितीय सूक्ष्म पाषाण औज़ारं श्रेयः जोस–मैनुएल बेनितो, 2014। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स। (https://en.wikipedia.org/wiki/Microlith#India)।

इस काल से संबंधित सूक्ष्म पाषाण औज़ार आकार में काफी छोटे, तेज और बहुत लाभकारी थे। ये औज़ार सामान्यतः ज्यामितीय आकार में बनाए जाते थे (2.2)। अब उच्च पुरापाषाण की तुलना में मानव नदियों के किनारों पपर अधिक सघनता से रहने लगे। मानव नई जलवायु परिस्थितियों के प्रति और अधिक अनुकूलित हो गए। नदियों के किनारों पर रहने से उनकी जीवन शैली अधिक स्थायी हो गई और पूरी दुनिया में विभिनन संस्कृतियों का उद्‌भव हुआ। इस प्रकार, मानव इतिहास के इस काल में एक सांस्कृतिक बदलाव देखा गया। दक्षिण भारत में मानवों ने सूक्ष्म औज़ारों का निर्माण लगभग 35,000 वर्ष पूर्व करना आरंभ कर दिया था (हबीब, 2010: 17)। सूक्ष्म पाषाण औज़ारों वाले स्थल किसी विशेष इलाके या क्षेत्र तक सीमित नहीं थे, वे पूर्व से लेकर भारत के सुदूर दक्षिण में फैले हुए थे।

यद्यपि मानव जीवन के आखेटक–संग्रहण चरण में ही बना रहा, परंतु इस चरण के दौरान शिकार के स्वरूप में परिवर्तन देखा गया। हमारे पास मध्यपाषाण काल से संबंधित आरंभिक शैल कला के नमूने उपलब्ध हैं जो बदलते भौतिक

और पारिस्थितिकीय कारकों पर प्रकाश डालते हैं। ये शैल चित्र अपने आप में ही मानव–परिवर्तन अतर्संबंधों में महत्वपूर्ण सांस्कृतिक विकास को परिलक्षित करते हैं। शैल चित्रों के अतिरिक्त कई स्थलों पर कब्रें भी मिली हैं। वी. एन. मिश्रा के अनुसारः

''भीमबेटका और अन्य गुफाओं एवं शैलाश्रयों में शिकार के दृश्य भालों, धनुषों एवं तीरों के साथ विभिन्न प्रकार के शिकारों को दर्शाते हैं, सभी को सूक्ष्म पाषाण औज़ारों से नोकदार और काँटेदार बनाया गया है, शिकार करते हुए पीछा करते हुए (एक दृश्य में अभियान में 80 व्यक्ति हैं) ... महिलाओं को शिकार घेरने में भाग लेते हुए दिखाया गया है'' (मिश्रा, 1989: 26)।

इस संबंध में ऑलचिन और ऑलचिन ने उल्लेख किया हैः ''मध्य भारत की गुफाओं में मृत्यु के दृश्य उन सभाओं को दर्शाते हैं जिनमें कई परिवार या लोगों के छोटे समूह (bands) शामिल रहे होंगे। इस तरह के मौके दुनिया के कई भागों में आखेटक–संग्रहकों को {एक माध्यम} प्रदान करने के लिए जाने जाते हैं ... (जिसके द्वारा) महत्वपूर्ण और मूल्यवान वस्तुओं के विनियम और परिवार के नज़दीकी संबंधियों या स्थानीय समूहों से पर वृहद सामाजिक बंधनों को भी मजबूत किया जा सके'' (ब्रिजेट आर रेमण्ड ऑलचिन, 1982: 63)।

चित्र 2.3: सींग वाले सूअर का चित्र, शैलाश्रय 15, भीम बेटका, मध्य प्रदेश। श्रेय: बर्नार्ड गाग्नोन, 2013। स्रोत: विकिमीडिया कॉमन्स (https://en.wikipedia.org/wiki/File:Rock_Shelter_15,_ Bhimbetka_02.jpg.)

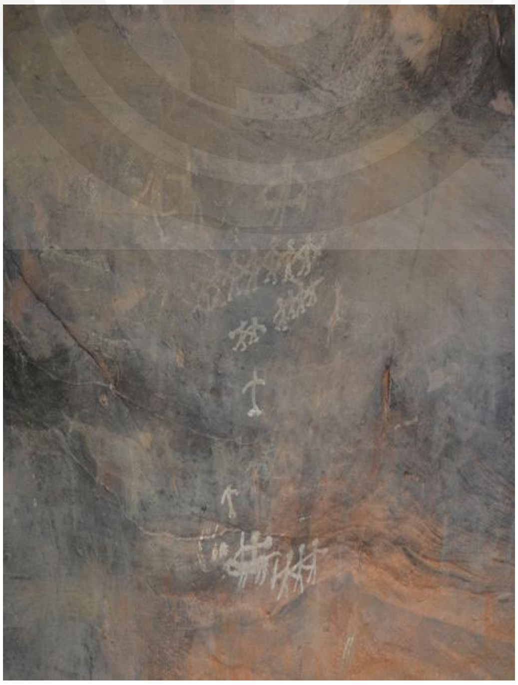

चित्र 2.4: नृत्य का चित्र, भीमबेटका। श्रेयः नंदन उपाध्याय, 2011। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स। (https://en.wikipedia.org/wiki/File:Dancing_painting_at_ Bhimbetka. jpg.) ।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

चित्र 2.5: केटवरम–शैल चित्र, कर्नूल जिला, आंध्र प्रदेश। श्रेयः चिवी 1085, 2012। स्रोतः विकिमीडिया कॉमन्स.

(**https://commons.wikimedia.org/wiki/**

File:Ketavaram_rock_paintings.JPG) I

पूरे उपमहाद्वीप में मध्यपाषाण कालीन संस्कृतियों के प्रमुख स्थल इन क्षेत्रों में पाए जाते हैं:

1) पश्चिमी राजस्थान,

2) उत्तरी गुजरात,

3) मेवाड़ का पठार, मध्यभारत और उड़ीसा,

4) छोटा नागपुर का पठार और दक्खन का पठार,

5) मुंबई तट, तेलंगाना का पठार, और

6) पूर्वी घाट।

मिश्रा ने सही उल्लेख किया है:

''मध्यपाषाण कालीन समाजों ने अपने पूर्वजों की तुलना में बहुत विविध आवासों का दोहन किया है।'' मध्यपाषाणकालीन इलाकों की बढ़ती सघनता के साथ, लोगों ने नए क्षेत्रों में रहना भी आरंभ किया जैसे:

क) गंगा घाटी,

ख) दामोदर घाटी,

ग) केरल का तटीय क्षेत्र,

घ) दक्षिण तमिलनाडु का तटीय क्षेत्र।

मध्यपाषाण काल के कुछ स्थलों में बाद के ताम्रपाषाणीय स्थलों से अधिव्यापन (overlap) दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, अरावली पहाड़ियों के पूर्व में स्थित बागोर (राजस्थान) में कालांतर में आखेटक–संग्रहक समुदायों से फसल आधारित कृषि करने वाले समुदायों की ओर परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

गंगा घाटी के मध्यपाषाण कालीन आखेटक–मछुआरे–संग्रहक

सराय–नाहर राय और महादहा मध्य गंगा घाटी के विशालतम प्रागैतिहासिक स्थलों में से हैं जहाँ पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त हुए हैं:

क) सूक्ष्म पाषाण औज़ार, और

ख) मानव कब्रें

14 व्यक्तियों के साथ कुल 11 कब्रें और 30 व्यक्तियों के साथ 28 कब्रें क्रमशः सराय–चाहर राय और महादहा में मिली हैं, जिसमें महादहा में दो ऐसी कब्रें है जिनमें दो व्यक्तियों को एक साथ दफनाया गया था। ये कब मोटे तौर पर या तो पूर्व–पश्चिम या फिर पश्चिम–पूर्व दिशा के अनुसार बनी हैं। दोनों स्थलों पर दफनाए गए व्यक्तियों में से 50 प्रतिशत से अधिक पुरूष थे। उत्खनन के दौरान प्राप्त शवों के साथ दफनाई गई वस्तुएँ सामाजिक पदानुक्रम (social hierarchy) की ओर इशारा करती हैं। अन्य कलाकृतियां सूक्ष्म पाषण औज़ारों की विभिन्न विशेषताओं को प्रकट करती हैं जिनमें शामिल है:

क) सुआ (awls)

ख) अचिंद्र (lunates)

ग) पुनर्परिष्कृत फलक (retouched blades)

घ) अग्रक (points)

ड़) त्रिभुज (triagles)

इ स्थलों के आसपास का क्षेत्र एवं इन सूक्ष्म पाषाण औजारों को बनाने के लिए उपयोग में आने वाले पत्थर एक विनिमय तंत्र का सूचक है। पुरातात्विक अनुसंधान ने निचले अक्षांक्ष क्षेत्रों में मौसमी प्रवास और यायावर जीवन के साक्ष्यों को उजागर किया है। अत्यधिक पौष्टिक और जीविका के भरोसेमंद स्रात प्रदान करने वाले संमृद्ध जलीय संसाधनों की संभावना वाले कुछ स्थलों पर लोग पूरे साल भर रहते थे। मध्यपाषाण काल के दौरान बढ़ती आबादी के साथ ऐसे स्थलों पर कब्ज़ा करने की प्रतिस्पर्धा के कारण शक्तिशाली समूहों द्वारा भूमि पर दावे किए गए होंगे जिनमें कब्रें अनुष्ठानिक प्रतीकवाद का भाग होती होंगी। इन सभी घटनाओं ने इस समुदायों को एक समूह के तौर पर पहचान की भावना प्रदान की होगी। इसलिए इसके सामाजिक और सांस्कृतिक निहितार्थ एवं संबंध दिखाई देते हैं (जैसा कि गुफा चित्रों में प्रदर्शित किया गया है)।

इस प्रकार हम उपरोक्त चर्चा से अनुमान लगा सकते हैं कि पुरापाषाण और मध्यपाषाण काल के आखेटक–संग्रहक समुदाय एक जैसी प्रकृति के नहीं थे।

इन समुदायों के बीच क्षेत्रीय विभिन्नताएं मौजूद थीं, जो उनके अंतर्विनिमयों और विशिष्ट पर्यावरणीय परिस्थितियों पर आधारित थीं।

आखेटक–संग्रहकों के जीवन की विशिष्ट विशेषताओं में परिवार, स्थानीय समूहों और उनके परिवार के नजदीकी या स्थानीय समूहों से परे उनके समुदाय के अन्य सदस्यों के साथ संबंधों का एक सामाजिक जीवन शामिल हैं। व्यापार विनिमय के एक तंत्र के भी संकेत मिले हैं जिसमें विभिन्न आखेटक–संग्रहक समुदाय उन स्थलों पर मिलते थे जहाँ उच्च गुणवत्ता/किस्म का कच्चा माल बहुतायत में उपलब्ध रहा होगा।

आखेटक–संग्रहक समय के साथ विकसित हुए पत्थर के औज़ारों की सहायता से भोजन के लिए अपन आसपास के जानवरों का पीछा करते थे। एक क्षेत्र में जानवरों की आबादी कम होने के बाद वे नए क्षेत्रों में चले जाते थे। स्पष्ट साक्ष्यों की कमी के कारण जीवाश्म अवशेषों के द्वारा शिकार किए गए जानवरों की प्रजातियों में अंतर कर पहचान करना मुश्किल है। शिकार से परिवर्तित होकर जानवरों को पालतू बनाने और अनुभव के साथ बाद में उनके प्रजनन के पुरातात्विक साक्ष्य खण्डित प्रकृति के हैं या अधूरे हैं।

ऐसा माना जाता है कि इन समुदायों ने लगभग 20,000 वर्ष पूर्व जानवरों को पालतू बनाना आरंभ किया। कुत्ते जैसे जानवरों ने शिकार की गतिविधियों में इन समुदायों की सहायता की। करीब 6000 बी.सी.ई. तक दुनिया के कई क्षेत्रों में शिकार–संग्रहण छोड़कर पशुचारण और कृषि गतिविधियों को अपनाना शुरू किया। भारत में पशुओं को पालतू बनाने का पहला प्रमाण नर्मदा घाटी में स्थित आदमगढ़ की पहाड़ी से मिलता है।

2.4 यायावर/खानाबदोश समुदाय

स्थायी बसावट का अर्थ स्थायी रूप में जीवन से है जिसमें लोग जीविका के सघन के रूप में कृषि करते हुए एक निश्चित स्थान पर बस जाते हैं। वहीं दूसरी ओर, यायावर या खानाबदोश लोगों के वे समूह हैं जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते हैं। वह चरण जिसमें खानाबदोश समुदाय पशुचारण करते हैं, उसे यायावरी पशुचारण कहा जाता है। किसी क्षेत्र की पर्यावरणीय परिस्थितियाँ खानाबदोश जीवन अपनाने के आधारभूत कारकों में से एक हैं।

ए. एम. खाज़ानोव के अनुसारः

''यायावरी पशुचारण खाद्य उत्पादन करने वाली एक अर्थव्यवस्था है जहाँ पूरा समुदाय भोजन की आपूर्ति के लिए अपने पशु समूह पर निर्भर होता हैं।

यायावरी पशुचारण में यायावर अपनी आजीविका के लिए पशुओं के समूह का पालन करते थे और चारागाह की तलाश में पलायन करते थे। चूंकि उन्हें अपने पशुओं के लिए व्यापक चरागाह की आवश्यकता थी, वे चार से पाँच परिवारों के समूह में रहते थे। वे अपने पशुओं के लिए उपयुक्त चारे वाले स्थानों पर मौसमी प्रवास करते थे। सर्दियों में वे जंगलों के पास और पहाड़ी घाटियों में रहते थे।

कुछ जानवरों को पालतू बनाना बहुत मुश्किल था। इसलिए, जो व्यवहार में कोमल थे और जिन्हें आकर्षित किया जा सकता था, उन्हें पालतू बनाया गया होगा। एक लंबे समय में निरंतर संपर्क के कारण मनुष्यों के साथ एक सहजीवी संबंध विकसित हुआ होगा (फेगन, 2014)। दूसरी ओर, कैद में जानवरों के

प्रजनन के कारण दूध उत्पादों और अन्य उप–उत्पादों जैसे खाल और चमड़े के लिए मनुष्यों द्वारा दोहन करने की क्षमता विकसित हुई होगी। उपलब्ध घास के मैदानों द्वारा दोहन करने की क्षमता विकसित हुई होगी। उपलब्ध घास के मैदानों की खाज के कारण प्रादेशिक स्वामित्व की अवधारणा विकसित हुई होगी। भारत में भूमि के एक बहुत छोटे हिस्से में ही घास के मैदान स्थित हैं।

यद्यपि पशुचारण एक सहायक गतिविधि है जो सामान्यतः कृषकों में भी प्रचलित है, परंतु कुछ स्थानों पर मानव समूहों ने खानाबदोश जीवन शैली को ही संपूर्ण रूप से अपनाया। वे कारण जिन्होंने दुनिया के कुछ क्षेत्रों में स्थायी कृषि को अपनाने के विरुद्ध खानाबदोश पशुचारण को जन्म दिया, उन्हें समझने के लिए जीविका के दोनों शैलियों के मध्य तुलना पर्याप्त होगी।

खानाबदोश समुदाय अपने आस–पास की भूमि और जल संसाधनों पर निर्भर थे, लेकिन इन प्राकृतिक संसाधनों में हस्तक्षेप और नियंत्रण की आवश्यकता खानाबदोश समुदायों को नहीं थी। फिर, पशुचारण चरित्र में भी अधिक व्यक्तिवादी था। नियंत्रण और हस्तक्षेप के अभाव में, पारिस्थितिकीय और मौसमी कारकों की वजह से खानाबदोश समुदायों में क्षेत्रीयता की अवधारणा विकसित हुई होगी। कई क्षेत्रों में इस तरह के प्रमाण सामने आए हैं।

यह जरूरी नहीं था कि खानाबदोश समुदाय बसे हुए समुदायों के साथ हमेशा संघर्ष में रहें। बल्कि,उनकी अनाज की आवश्यकताओं को बसे हुए समुदायों ने ही पूरा किया। रोमिका थापर के अनुसार अधिकांश पशुचारक विनिमय की एक व्यवस्था का हिस्सा थे जिसके द्वारा वे कृषकों एवं अन्य लोगों के संपर्क में आते थे (थापर, 2002: 57)। खानाबदोश समुदायों ने खाद्य फसलों को उगाने के गन

श्रम वाले कार्य को सुविधापूर्वक अनदेखा कर दिया। खाद्य फसले के बदले में वे कृषकों को खानाबदोश समूहों द्वारा माँस, ऊन और खाल की नियमित आपूर्ति की जाती होगी।

इस आदान–प्रदान के अलावा खानाबदोश समुदायों को कृषि क्षेत्रों में फसल की कटाई के बाद खेतों में ढूंठों की सफाई और खाद्य उपलब्ध कराने के लिए बुलाकर प्रोत्साहन किया जाता होगा। खानाबदोश समुदाय कृषि चारे के बदले में बसे हुए समुदायों के जानवरों को चराने की सेवा भी प्रदान करते होंगे। प्रायद्वीपीय भारत में नवपाषाण काल में खानाबदोश समुदाय बड़ी संख्या में पशुपालन करते थे।

जीविका के विभिन्न तरीकों का इस्तेमाल करने वाले दो समुदायों के बीच सांस्कृतिक आदान–प्रदान हुआ होगा। जैसा कि भट्टाचार्य ने सही कहा है, ''कुछ स्थलों पर पाए गए पशुओं के बाड़े और राख के टीले निरंतर रूप से बड़ी संख्या में पशुओं क झुंडों को चराने की तरफ इशारा करते हैं। समय–समय पर इस तरह के होने वाले प्रवासों के दौरान खानाबदोश समुदाय उच्च संस्कृति वाली बस्तियों के संपर्क में आए होंगे। इस संपर्क के मध्यम से कारीगरों के उत्पादों ने मानव सभ्यता में अपनी जगह बनाई (भट्टाचार्य, 1989: 166)।

इसलिए, खानाबदोश समुदायों में उनके परिवार आधारभूत संगठन होते थे और वंश पर आधारित रिश्तेदारी–संबंध तंत्र ने उनके जीवन को निर्देशित किया होगा। उनका जीवन बसे हुए समुदायों की तुलना में अधिक व्यक्तिवादी था। चारागाहों के प्रबंधन – उनके उपयोग की अवधि और मौसमी अधिकार को

लेकर समुदाय में आंतरिक टकराव उत्पन्न हुए होंगे। ये समुदाय कई स्थलों पर बसे हुए कृषि समुदायों के साथ सह–अस्तित्व में थे और कभी–कभी स्वयं भी मौसमी खेती करते थे।

दक्षिण दक्कन में पशुचारण संस्कृतियाँ

जीविका के लिए संपूर्ण रूप से भेड़/बकरियों के समूह पर आधारित पशुचारण के साथ कृषि की रणनीति अपनाने वाले समुदायों के उदाहरण दक्षिण दक्कन से आते हैं:

1) कर्नाटक में कुरुबा या कुरवा

2) तेलंगाना में रायल सीमा और गोल्ला या कुरूव।

ये अर्ध–स्थायी पशुचारक यायावर अपने अस्थायी विस्थापन के पीछे का कारण नीतिकोरता (जल की कमी) को बताते हैं। कुरूवा लोगों को एक वर्ग व्यापारी है जो ऊन का व्यापार करता है। उनका पारंपरिक शिल्प हैं। गोंगली (ऊन के कंबल) बुनना – जो कि पशुचारकों की भौतिक संस्कृति में सामान्य रूप से एक सर्वव्यापी तत्व ह। यह वर्ग कृषि करता है लेकिन उनके समुदाय के अन्य लोगों की तरह जीविका के लिए उस पर निर्भर नहीं है। परंतु ऐतिहासिक काल की तरह ही इन समुदायों के सदस्य अपने आस–पास के कृषक समाज के साथ निरंतर संपर्क में रहते हैं।

भेड़/बकरी पालन के साक्ष्य 3000 वर्ष बी.सी.ई. नवपाषाण–ताम्रपाषाण ग्राम्य बस्तियों से प्राप्त हुए हैं। वस्तुतः कर्नूल के कुछ गुफा चित्रों (चित्र 2.6) में

परवर्ती मध्यपाषाणीय आखेटक–संग्रहक समुदाय और नवपाषाण–ताम्रपाषाणीय कृषकों के बीच संपर्क दर्शाते हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित थे और अन्य समान समुदायों की मौखिक परंपराएँ उनके पशुचारण अनुभवों के तत्व के रूप में बसे हुए समुदायों के साथ संघर्ष की ओर इशारा करते हैं।

जानवरों और पौधों के पालतूकरण की प्रक्रियाओं के एक साथ मिलन के बाद ही मानव का विकास अपने सर्वाधिक उत्पादक चरण में प्रवेश कर पाया। आरंभिक खेती वाले पौधों की जंगली किस्में छोटे क्षेत्र तक ही सीमित थीं। शिकार–संग्रहण से कृषि की ओर संक्रमण एक लंबी प्रक्रिया थी जिसने जटिल सामाजिक संरचनाओं को जन्म दिया। पशुओं के पालतूकरण एवं कृषक समाज का पहला प्रमाण बलूचिस्तान में स्थित मेहरगढ़ से मिलता है। सिंधु घाटी में भी बस्तियां इसी प्रकार की हैं। इन जटिल समाजों के साथ शहरीकरण का उदय हुआ।

नव–पाषाण क्रांति और कृषि के उद्भव तक; जो मानव जाति और पर्यावरण के इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण मोड़ था, मानव अपनी जीविका के लिए पर्यावरण पर अत्यधिक निर्भर थे। लेकिन अब मानव पर्यावरण और उसकी प्रक्रियाओं को काफी हद तक प्रभावित कर सकता था।

न सिर्फ पत्थर के औज़ारों पर मानव की निर्भरता में परिवर्तन आया; बल्कि सांस्कृतिक क्षेत्र में भी बदलाव देखे गए। उदाहरण के लिए, इस समय से मिट्टी के बर्तन दिखाई देने लगे; स्थायी बस्तियाँ सार्थक रूप से विकसित हुई, धातु का आरंभिक उपयोग साफ रूप से स्पष्ट हुआ। बाद में लोहे के आगमन के प्रभाव से नंदी आधारित कृषि से खुले मैदान आधारित कृषि की ओर संक्रमण

हुआ। अगली इकाई 3 में भारतीय उपमहाद्वीप में कृषि क प्रसार और विकास में पर्यावरण की भूमिका पर प्रकश डाला जाएगा।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित पर संक्षिप्त लेख लिखें:

   क) प्रागैतिहास और आद्य इतिहास

   ख) पृथ्वी का इतिहास

   ग) सोअन सांस्कृतिक परंपरा

   घ) भीमबेटका गुफा चित्र

2) आखेटक–संग्रहकों के अध्ययन से संबंधित प्रमुख स्रोत कौन से हैं? उनकी प्रकृति और सीमाओं पर विस्तारपूर्वक लिखें।

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

   ....

3) आखेटकों–संग्रहकों से संबंधित पुरापाषाण कृतियों, के बारे में चर्चा करें। भारतीय उपमहाद्वीप में प्रमुख औज़ार निर्माण करने वाले स्थलों की सूची बनाएं।

....

....

....

....

....

....

4) पर्यावरण के इतिहास में मध्यपाषाण काल से संबंधित प्रमुख विशेषताएं कौन सी हैं?

....

....

....

....

....

....

5) खानाबदोश समूहों के जीवन का परीक्षण कीजिए। दक्षिण भारत से इस तरह के भिन्न प्रकार के विकास वाले एक समुदाय का उदाहरण दीजिए।

....

....

....

....

....

....

2.5 सारांश

सभी पर्यावरणी परिवर्तन आवश्यक रूप से मानवीय–माध्यम (human ageney) के कारण नहीं हुए, वे अचानक और विनाशकारी प्रकृति के भी हो सकते थे। अन्य परिवर्तन धीरे–धीरे लंबे समय में हुए होंगे। उदाहरण के लिए, किसी क्षेत्र की वनस्पतियों और जीवों के संयोजनों (assemblages) में परिवर्तन, इसे अधिक रहने योग्य और मानव बस्तियों के लिए अनुकूल बनाते हैं इस प्रका बस्तियों के समूहों की बसावट बदलते पारिस्थितिकीय अवसरों के साथ जुड़ी हुई थी।

हालांकि इसका यह मतलब नहीं हैं कि मानव ने उस पर्यावरण को प्रभावित नहीं किया जिसमें वे रहते थे। बल्कि पर्यावरण पर मनुष्यों द्वारा प्रदर्शित प्रभाव समकालीन अवधि तक ही सीमित नहीं है जैसा कि अक्सर माना जाता ह। भले ही समान पैमाने पर नहीं, मानव क्रियाओं जैसे शिकार और पशुचारण ने क्षेत्रीय स्तर पर प्रभाव डाला जब कुछ प्रजातियां अत्यधिक शिकार एवं चयनात्मक प्रजनन (selective breeding) के कारण समाप्त हो गई होंगी।

हाल के पुरातात्विक शोधों में पर्यावरण के ऐतिहासिक आख्यान यह इशारा करते हैं कि प्रारंभिक समाजों में मानव–पर्यावरण संबंध रैखिक या सीधे नहीं थे। इस संबंध को प्रभावित करने में कई कारकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई; जिसका प्रभाव मानव और पर्यावरण दोनों पर पड़ा।

इस इकाई में हमने समय के साथ मानव के विकसित होने के साथ–साथ पर्यावरणीय इतिहास के क्षेत्र में हो रहे विविध बदलावों की व्याख्या करने का प्रयास किया है। इस घटना को समझने के लिए हमने ऐतिहासिक स्रोतों की प्रकृति चर्चा आरंभ की और स्वयं आखेटक–संग्रहक समुदायों द्वारा अनुभव किए गए विशेष चरणों का विश्लेषण किया। अगले क्रम में, आखेटक–संग्रहकों से यायावदी पशुचारण की ओर धीरे–धीरे बदलाव और जीविका के रूप में कृषि करने वाले बसे हुए समुदायों के इसी समय उद्‌भव पर जोर दिया गया। बेहतर समय के लिए मानव और पर्यावरणीय अंतर्संबंधों के इन चरणों में क्षेत्रीय विविधताओं और सामाजिक–सांस्कृतिक प्रगति का ध्यान रखा जाना चाहिए। अंत में, मानव जाति के पर्यावरणीय इतिहास में जब कृषि प्रवेश करती है, वहाँ हमने इस इकाई को समाप्त किया। इसकी और संबंधित घटनाओं की चर्चा अगली इकाई में की जाएगी।

2.6 शब्दावली

पारिस्थितिकी : जीवों और उनका पर्यावरण के साथ संबंधों का वैज्ञानिक अध्ययन।

शल्क (Flakes) : औज़ार बनाने के लिए प्रहार के दौरान उत्पन्न पत्थर के छोटे एवं पतले टुकड़े।

प्रहार प्रक्रिया (Knapping) : पत्थर के कोर से शल्कों को प्रहार द्वारा अलग करने की प्रक्रिया।

मध्यपाषाण : पुरापाषाण एवं नवपाषाण कालों के बीच का मानव इतिहास का काल।

सूक्ष्म पाषाण औज़ार (Microliths) : मध्यपाषाण काल के दौरान बनाए गए पत्थर के बहुत छोटे आकार के औज़ार।

नवपाषाण : एक पुरातात्विक काल जो अधिक विकसित घिसे और पॉलिशदार औज़ारों के आधार पर कृषि के आंरभ का प्रतिनिधित्व करता है।

पुरापाषाण : प्रागैतिहास का काल जिसमें पत्थरों के औज़ार विकसित हुए और इसलिए इसे पुरापाषाण युग कहा गया।

पेलिनोलॉजी (Palynology)	:	पुरातात्विक खोजों के दौरान प्राप्त पुष्प परागकणों एवं अन्य बीजाणुओं का अध्ययन इस तरह का अध्ययन अतीत में पर्यावरण के विश्लेषण में सहायक होता है।
प्लीस्टोसीन (Pleistocene)	:	16 लाख वर्ष से 15000 वर्ष पूर्व का भूमर्भशास्त्रीय काल।
प्रागैतिहास	:	इतिहास का काल जिसमें लिखित स्रोत उपलब्ध होते हैं और पुरातात्विक अवशेषों से ही जानकारी एकत्रित की जाती है।
आद्य इतिहास	:	प्रागैतिहास और इतिहास (जिसमें लिखित स्रोत उपलब्ध हों) के बीच का काल, जब सभ्यता/समाज लेखन की ओर अग्रसर नहीं हुई हो लेकिन इसी समय दूसरी सभ्यताओं/समाजों ने अपने लेखन में उनके अस्तित्व को दर्ज किया है।

2.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

1) क) भाग 2.1 देखें।

ख) सूचना प्रकोष्ठ, भाग 2.2 देखें।

ग) उपभाग 2.3.1 देखें।

घ) उपभाग 2.3. देखें।

2) भाग 2.2 और 2.3 देखें।

3) उपभाग 2.3.1 देखें।

4) उपभाग 2.3.2 देखें।

5) भाग 2.4 देखें।

2.8 संदर्भ ग्रंथ

Arthur, Kathryn W. (2010), 'Feminine Knowledge and Skill Reconsidered: Women and Flaked Stone Tools', *American Anthropologist*, New Series, Vol,112 (2): 228-243.

Bender, Barbara (1975), *Farming in Prehistory: From Hunter-Gatherer to Food-Producer* (New York: St. Martin's).

Bhattacharya, D. K. (1989), *An Outline of Indian Prehistory* (New Delhi: Popular Prakashan).

Allchin, Bridget and Allchin, Frank Raymond (1982), *Cambridge World Archaeology: The Rise of Civilization in India and Pakistan* (Cambridge: Cambridge University Press).

Childe, V. Gordon (1956 [1942]), *What Happened in History* (Harmondsworth: Peregrine Books).

Childe, V. Gordon (1945), 'Directional Changes in Funerary Practices During 50,000 Years', *Man*, 45: 13-19.

Fagan, Brian M. and Durrani, Nadia (2014), *People of the Earth: An Introduction to World Prehistory*, 14th edition (New York: Routledge).

Fisher, Michael H. (2018), *An Environmental History of India: From Earliest Times to the Twenty-First Century* (Cambridge: Cambridge University Press).

Khazanov, Anatoly. M. (1994), *Nomads and the Outside World* (Wisconsin: The University Wisconsin Press).

Laet, S.J. de, A. H. Dani, J. L. Lorenzo Gieysztor and R. B. Nunoo (Eds.) (1996), *History of Humanity, Volume 1: Prehistory and the Beginnings of Civilization* (London: Routledge).

Lee, Richard B. and I. Devore (Eds.) (1968), *Man the Hunter* (New York).

Mithen, Stephen (1995), 'Paleolithic Archaeology and the Evolution of Mind', *Journal of archaeological Research*, Vol. 3(4): 305-332.

Ohel, Milla Y. (1978), '"Clactonian Flaking" and Primary Flaking: Some Initial Observations', *Lithic Technologies*, 7 (1): 23-28.

Palacio-Perez, E. (2013), 'The Origins of the Concept of 'Paleolithic Art': Theoretical Roots of an Idea', *Journal of Archaeological Methods and Theory*, Vol. 20 (4): 682-714.

Mishra, V. N. (1989), 'Stone Age India: An Ecological Perspective', *Man and Environment,* Vol. XIV. No. 1: 17-64.

Habib, Irfan (2001), 'Prehistory', *People's History of India, Series-I* (Delhi).

Habib, Irfan (2010), *A People's History of India: Man and Environment – The Ecological History of India* (Aligarh Historians Society: Tulika Books).

Hughes, J. Donald (2001), *An Environmental History of the World: Humankind's Changing Role in the Community of Life* (London and New York: Routledge).

Myllyntaus, Timo and Saikku, Mikko (1999) (Eds.), *Encountering the Part in Nature: Essays in Environmental History* (Athens: Ohio University Press).

Rangarajan, Mahesh and Sivaramakrishnan, K. (2012) (Eds.), *India's Environmental History: From Ancient Times to Colonial Period – A Reader* (Ranikhet: Permanent Black).

Rangarajan, Mahesh and Sivaramakrishnan, K. (2014), *Shifting Ground: People, Animals and Mobility in India's Environmental History* (Oxford Scholarship Online).

Simmons, I.G. (2008), *Global Environmental History: 10,000 BC to 2000 AD*, Vol. I (Edinburgh: Edinburgh University Press).

Stout, Dietrich (2011), 'Stone Toolmaking and the Evolution of Human Culture and Cognition', *Philosophical Transactions: Biological Sciences*, 366 (1567): 1050-1059.

Thapar, Romila (1966), *History of India*, Vol. I (New Delhi: Penguin).

2.9 अनुदेशात्मक वीडियो सुझाव

Environmental History: Introduction | CEC[10] - UGC

https://www.youtube.com/watch?v=x1yBWvm9sNk

Origin of Humans

https://www.youtube.com/watch?v=SUfujVWcj5I

Stories from the Stone Age: The Human Adventure | History Documentary

[10] Consortium for Educational Communication, New Delhi.

https://in.video.search.yahoo.com/search/video?fr=spigot-nt-gcmac&p=prehistoric+tool+bbc+documentary#id=2&vid=9ce7c690f5fdd1c32adb23b72f71a334&action=click

Why Prehistoric Women Had Super-Strong Bones

https://video.nationalgeographic.com/video/171129-strong-prehistoric-women-vin-spd

Mystery of Life in the Paleolithic Age

https://www.youtube.com/watch?v=Tx9cuROQWlM

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY